

लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला-6
ज्ञान की राजनीति पुस्तकमाला-6

जन-संघर्ष
और
लोकविद्याधर समाज की एकता

लोकविद्या जन आन्दोलन
मुलताई समागम, जिला बैतूल, मध्य प्रदेश
11 जनवरी 2014

विद्या आश्रम
सारनाथ, वाराणसी

लोकविद्या जन आन्दोलन
मुलताई समागम आयोजन समिति

चित्रा सहस्रबुद्धे, वाराणसी
अवधेश कुमार, सिंगरौली
संजीव दाजी, इन्दौर
दिलीप कुमार 'दिली', वाराणसी
बी. कृष्णराजुलु, हैदराबाद
नारायण राव, हैदराबाद
गिरीश सहस्रबुद्धे, नागपुर
रविशेखर, सिंगरौली
एकता, सिंगरौली
विजय कुमार, मधुबनी
मोहन राव, चिराला
विलास भोंगाड़े, नागपुर

सुनीलम, मुलताई
आराधना भार्गव, छिंदवाडा
महेन्द्र आट्या, बेगमगंज
टी. आर. आट्या, बेगमगंज
जगदीश दोडके, मुलताई
अशोक बरोदे, मुलताई
कुलदीप पहाड़े, मुलताई
संतोष राव वारस्कर, मुलताई
सुमन बाई कसारे, मुलताई
कृष्णा ठाकरे, मुलताई
गुलाब देशमुख, मुलताई
छोटू, मुलताई
लक्ष्मण बोरबन, मुलताई



शहीद किसानों की स्मृति

12 जनवरी 1998 को मुलताई में किसानों पर प्रशासन ने ऐसा बर्बर गोलीकाण्ड किया कि 24 किसान पुलिस की गोली से मारे गये। किसान संघर्ष समिति के कई साथियों पर पचास से ज्यादा मुकदमे दायर किये गये। सुनीलम, प्रह्लाद और शेषराव को अक्टूबर 2012 में मुलताई सत्र न्यायालय ने आजीवन कारावास की सजा सुनाई। जबलपुर उच्च न्यायालय ने फरवरी 2013 में तीनों को जमानत दी। किसी भी प्रशासनिक या पुलिस अधिकारी पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। 1998 का वर्ष मौसम के चलते फसल नष्ट होने का तीसरा वर्ष था और किसान रु. 5000/- का मुआवजा मांग रहे थे, लेकिन सरकार केवल रु. 400/- देने की बात कर रही थी।

12 जनवरी को हर साल किसान संघर्ष समिति शहीद किसानों को श्रद्धांजलि का कार्यक्रम करती है और देश भर से सामाजिक कार्यकर्ताओं को आमंत्रित करती है। इस वर्ष समिति ने इस अवसर पर लोकविद्या जन आन्दोलन को अपना अधिवेशन करने के लिये आमंत्रित किया है। इसी अधिवेशन के अवसर पर यह पुस्तिका प्रकाशित की जा रही है। लोकविद्या जन आन्दोलन का यह अधिवेशन और यह पुस्तिका मुलताई संघर्ष के शहीद किसानों की स्मृति में इस देश के किसान संघर्षों को समर्पित है।

लोकविद्या जन आन्दोलन संयोजन समिति
लोकविद्या जन आन्दोलन सलाहकार समिति
लोकविद्या जन आन्दोलन मुलताई समागम आयोजन समिति

लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला-6
ज्ञान की राजनीति पुस्तकमाला-6

पुस्तिका : जन-संघर्ष और लोकविद्याधर समाज की एकता
लोकविद्या जन आन्दोलन मुलताई (बैतूल, मध्य प्रदेश) समागम की पुस्तिका
11 जनवरी 2014

सहयोग राशि - रु. 10.00

प्रकाशक :

लोकविद्या जन आन्दोलन के लिये विद्या आश्रम की ओर से
डा. चित्रा सहस्रबुद्धे, समन्वयक विद्या आश्रम द्वारा प्रकाशित।
पता : विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अशोक मार्ग
सारनाथ, वाराणसी-221007
फोन : 0542-2595120, 09839275124
ई-मेल : vidyaashram@gmail.com
वेब साइट : vidyaashram.org
ब्लॉग : lokavidyajanandolan.blogspot.com

मुद्रक :

सत्तनाम प्रिंटेर्स,
एस-1/208 के-1, नई बस्ती
पाण्डयेपुर, वाराणसी-221002

लोकविद्या जन आन्दोलन
जन-संघर्ष और लोकविद्याधर समाज की एकता

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	परिचय	4
2.	लोकविद्या विचार यात्रा	7
3.	हम क्या चाहते हैं?	9
4.	जन-संघर्ष क्या कह रहे हैं?	10
	● जन-संघर्षों का विस्तार	11
	● जन-संघर्षों की विशेषता	14
5.	जन-संघर्षों में एकता के रास्ते	18
	● लोकविद्याधर समाज के दुःख	18
	● जन-संघर्षों की बुनियादी शक्ति	19
6.	ज्ञान की राजनीति	21
	● ज्ञान आंदोलन	24
	● लोकविद्या का दावा	26
7.	आओ, नया रास्ता बनायें	31
8.	लोकविद्या साहित्य की सूची	



परिचय

किसान, आदिवासी, कारीगर, तरह-तरह की सेवाओं और मरम्मत का काम करने वाले, मछुआरे और निर्माण कार्यकर्ता, महिलायें, छोटे-छोटे धंधे वाले और पट्टरी और गुमटी के दुकानदार, ये लोग सब के सब गरीब हैं और जीवन की सभी सुविधाओं से महरूम हैं। सरकारें इन लोगों के लिये कुछ भी नहीं करतीं। जब भी जनता की या गरीब की बात होती है, इन्हीं की बात हो रही होती है। पढ़े-लिखे लोग सरकार की मदद से पूरी सार्वजनिक दुनिया पर छाये हुए हैं और सरकार के साथ मिलकर इस विचारधारा को बनाते और बढ़ाते रहते हैं कि 'विकास' के जरिये ही इन लोगों के हालात बदले जा सकते हैं। पढ़े-लिखे लोगों को इस 'विकास' के लिये और इस बात को बनाये रखने के ऐवज में मोटी-मोटी तनख्वाहें और तमाम सुविधायें दी जाती हैं। जबकि वास्तविकता यह है कि गरीबी और विपन्नता का कारण 'विकास' के अभाव में न हो कर, 'विकास' की वास्तविकता में ही है। फिर भी पूरे राजनीतिक क्षितिज पर केवल 'विकास' वाले हैं। पार्टियों वाले ही नहीं, बल्कि कई बार परिवर्तन वाले भी इस घेरे में आ जाते हैं। संतुलित विकास, संपोषी विकास, ग्रामीण विकास, पर्यावरण-मित्र विकास, जन-भागीदारी पर आधारित विकास, आदि, तरह-तरह के विशेषणों से नवाजा 'विकास' पूरी बहस पर छाया रहता है। गांधी को छोड़ दें तो बीसवीं सदी की परिवर्तन की सारी विचारधारायें 'विकास' की भंवर में फंसी हुई हैं। थोड़ा सा गहराई में जायेंगे तो इसका कारण भी दिखाई दे जायेगा। जिसने-जिसने आधुनिक शिक्षा और विश्वविद्यालय के ज्ञान को समाज में अच्छे के लिये बदलाव और सुधार के लिये वांछनीय माना वे सब 'विकास' के जाल में फंस गये। इस फंसाहट का शायद सबसे बड़ा कारण यह है कि जिन लोगों के लिये यह समाज बदलना जरूरी है उनकी काबिलियत या उनकी ताकत की ओर कभी देखा ही नहीं जाता, केवल

उनकी कमजोरी और समस्याओं की ही बात की जाती है। 'विकास' के भंवर से निकलने का इसके अलावा और कोई तरीका नहीं है कि इन लोगों की काबिलियत और इनकी ताकत को बदलाव के विचार और रास्ते की गंगोत्री के रूप में देखा जाय। लोकविद्या जन आन्दोलन यही काम करता है और 'विकास' के स्थान पर खुशहाली के मानक बनाने के प्रयास करता है, समाज के सबसे गरीब 25-30 फीसदी लोगों की खुशहाली के अर्थ के मार्फत।

किसान, कारीगर, तरह-तरह की सेवाओं का काम करने वाले, मछुआरे और निर्माण कार्यकर्ता, आदिवासी, महिलायें और छोटे-छोटे धंधे वाले, पटरी और गुमटी के दुकानदार ये सभी अपने ज्ञान के बल पर अपना जीवन और समाज चलाते हैं। इनके ज्ञान को लोकविद्या कहते हैं। इनकी सारी काबिलियत और ताकत इसी लोकविद्या में है। इन समाजों को लोकविद्याधर समाज कहते हैं। 'विकास' इन्हीं के शोषण और उत्पीड़न का विचार और कार्य है। खुशहाली के मानक लोकविद्या से बनते हैं और समाज को पूंजी की जगह ज्ञान के आधार पर संगठित करने का विचार विस्तार लेता है। लोकविद्या में दृढ़ विश्वास और आस्था होने का अर्थ यह है कि हम समाज को ज्ञान के आधार पर संगठित करने में विश्वास रखते हैं न कि पूँजी के बल पर। मनुष्य एक ज्ञान सम्पन्न प्राणी है और वह पूँजी जैसी किसी बाहरी व अमूर्त दानवी शक्ति से नियंत्रित हो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। पूँजी की व्यवस्था के चलते उसकी सारी गतिविधियाँ गुलामों की तरह बांध दी जायें, यह उसके स्वभाव के विरुद्ध है। लोकविद्या कभी मरती नहीं है। हमारे देश में ही अंग्रेजों ने लोकविद्या को खत्म करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने किसानों का जमकर शोषण किया, कारीगरों के उद्योगों को तबाह कर दिया, आदिवासियों को जंगलों से खदेड़ना शुरू किया, लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों में भी लोगों को सहारा लोकविद्या का ही रहा। लोकविद्या के बल पर न केवल ये जिन्दा रहे बल्कि समाज के लिये भोजन, कपड़ा, मकान आदि का इंतजाम भी करते रहे। आजादी के बाद भी इनके कामों और उद्यमों को सरकारों ने सहायता की हो ऐसा

नहीं हुआ, उल्टे तमाम महकमों में सरकार की नीति खुलेआम इन्हें नुकसान पहुंचाने वाली रही। उद्योग और तकनीक की नीति, बाजार नीति, वित्तीय नीति किसी में भी इन्हें जगह नहीं थी। 'विकास' के नाम पर सभी पढ़े-लिखे लोगों में सहमति बन गई और इन समाजों का उत्पीड़न फिर से तेज होता गया। लेकिन लोकविद्या मरी नहीं। सूचना युग में वैश्वीकरण की आंधी ऐसी चली कि चारों तरफ उजाड़ होता दिखाई दे रहा है लेकिन आज भी लोकविद्या के आधार पर पैदा उत्पादन और सेवा विश्वविद्यालय की विद्या से पैदा उत्पादन से कम नहीं ठहरते, न मात्रा में और न गुणवत्ता में। यह लोकविद्या की शक्ति नहीं तो क्या है? क्या समाज के बुनियादी बदलाव के लिये लोकविद्या का दावा पेश नहीं होना चाहिये?

इस पुस्तिका में लोकविद्या का दावा क्या है और यह कैसे पेश किया जा सकता है इसकी चर्चा की गई है। लोकविद्याधर समाजों के विस्तार पाते संघर्षों की एक मोटी फेहरिस्त बनाई गई है और उनकी विशेषताओं की चर्चा की गई है। इन समाजों के मूल कष्टों और उनकी ताकत के संदर्भ में उनके बीच व्यापक एकता की संभावना दिखाई गई है और इस एकता की ओर बढ़ने के ज्ञान मार्ग की चर्चा की गई है। यह ज्ञान मार्ग लोकविद्या दर्शन पर आधारित ज्ञान की राजनीति का मार्ग है। लोकविद्या के आधार पर विश्वविद्यालय की विद्या को चुनौती देते हुए सामान्य लोगों के एक ज्ञान आन्दोलन के निर्माण की बात की गई है। यही लोकविद्या जन आन्दोलन है।



लोकविद्या विचार यात्रा

लोकविद्या के नाम से विचार व कार्य की शुरुआत 1995 से हुई। लोकविद्या के नाम से पहला बड़ा सार्वजनिक कार्य 'लोकविद्या महाधिवेशन' नवम्बर 1998 में वाराणसी में हुआ। लोकविद्या की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से आयोजित इस महाधिवेशन में लोकविद्या और समाज से सम्बन्धित तमाम विषयों पर वार्ता के लिये देश भर से लगभग 1500 प्रतिभागियों ने पांच दिनों तक अपनी हिस्सेदारी की। किसानों, कारीगरों और महिलाओं के सम्मेलनों के माफ़त उनके अपने ज्ञान के दावे पेश किये गये। इसके बाद के वर्षों में 'लोकविद्या संवाद' के प्रकाशन के इर्द-गिर्द लोकविद्या प्रतिष्ठा का अभियान चलता रहा। फिर 2005 में वाराणसी में विद्या आश्रम बनाया गया। विद्या आश्रम को बनाने और शुरू से लोकविद्या कार्य को आगे बढ़ाने का संदर्भ किसान आन्दोलन में रहा है। जिस समूह ने यह कार्य किया है वह 1980 से ही किसान आन्दोलन में सक्रिय रहा और कारीगर, आदिवासी, पटरी के दुकानदार व महिलाओं के संगठनों से जुड़ा रहा।

विद्या आश्रम की स्थापना इस पहचान के साथ हुई कि सूचना तंत्र व इन्टरनेट के चलते ज्ञान की दुनिया में एक भूचाल सा आया है जिसने संगठित ज्ञान के शीर्ष पर बैठे साइंस को उसके सिरमौर स्थान से गिरा दिया है। यह पहचान की गई कि ज्ञान का दर्जा पाने के लिये अब साइंस की कसौटियों पर कसा जाना जरूरी नहीं रह गया जैसा कि औद्योगिक युग में हुआ करता था। इसके चलते लोकविद्या समूह ने यह समझा कि लोकविद्या को अपने लिये ज्ञान का दावा पेश करने और ज्ञान का वाजिब दर्जा फिर से हासिल करने का ऐतिहासिक मौका पैदा हुआ है। विद्या आश्रम ने शुरू से समाज में ज्ञान पर संवाद चलाकर प्रकाशनों

के माध्यम से और लोकविद्याधर समाज के संघर्षों से जुड़कर लोकविद्या का दावा पेश करना शुरू किया। इसी क्रम में अगरिया विद्या, नारी विद्या, स्थानीय बाजार अभियान, भाईचारा विद्यालय, कारीगर समाज, किसान पीठ, ज्ञान मुक्ति मंच, लोकविद्या पंचायत, ज्ञान पंचायत जैसी पहलों के मार्फत यह अभियान लोकविद्या जन आन्दोलन तक पहुंचा।

लोकविद्या जन आन्दोलन का पहला अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन वाराणसी में विद्या आश्रम परिसर पर 12-14 नवम्बर 2011 को हुआ। इसके बाद दरभंगा (मार्च-अप्रैल 2012), विजयवाडा (मई 2012), सिंगरौली (सितम्बर 2012) और इन्दौर (जनवरी 2013) में क्षेत्रीय सम्मेलन हुए। सेवाग्राम में मार्च 2012 में और मुम्बई में फरवरी 2013 में आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्ताओं की बड़ी-बड़ी बैठकें हुईं। इस दौर में इस ज्ञान आन्दोलन के तहत लोकविद्या समन्वय समूह, लोकविद्या मेल-मिलाप, लोकविद्या सत्संग, लोकविद्या ताना-बाना, लोकविद्या भाईचारा विद्यालय, लोकविद्या प्रपंचम, लोकविद्या साधिकार संघटना और लोकविद्या आश्रम के नाम से विचार और कार्यक्रम बनते गये हैं।

और अब किसान संघर्ष समिति (मध्य प्रदेश) के निमंत्रण पर बैतूल जिले में मुलताई में 11 जनवरी 2014 को लोकविद्या जन आन्दोलन का सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है। इस सम्मेलन में लोकविद्याधर समाज के संघर्षों के बीच समन्वय तथा जन-संघर्षों पर ज्ञान के नजरिये पर प्रमुखरूप से चर्चा होगी। यह चर्चा होगी कि क्या लोकविद्या दर्शन और ज्ञान की राजनीति कोई नई दुनिया का विचार दे पा रहे हैं।



हम क्या चाहते हैं ?

हम सबकी खुशहाली चाहते हैं। इसका मतलब क्या सबका विकास हो यही चाहते हैं? विकास नहीं, हम खुशहाली ही चाहते हैं। क्योंकि 'विकास' शब्द के विचार के तहत अब तक जो हुआ है उसका मतलब है जनता को बदहाल कर के कुछ लोगों के लिये ऐश की व्यवस्थाओं का निर्माण। हमें सबकी खुशहाली चाहिये। 'विकास' एक धोखा है। इस 'विकास' से समाज खुशहाल नहीं हो सकता।

खुशहाल समाज की कसौटी क्या है? खुशहाल समाज के मानक ये नहीं हैं कि कितने लोगों के पास कम्प्यूटर है, मोबाइल है या कितने लोग पढ़े-लिखे हैं, या बिजली कितनी पैदा होती है, कितना निर्यात होता है, कितने करोड़पति हैं, कितनी बड़ी सेना है, कितने आधुनिकतम हथियार हैं, कितने बड़े-बड़े शहर हैं, आदि-आदि। ये सब तो 'विकास' के मानक हैं और इन्हीं के चलते जनता बदहाल हो रही है। खुशहाली के मानक तो समाज के सबसे गरीब और हर तरह से वंचित 25-30 फीसदी जनता के जीवन में हैं; इनके जीवन का आर्थिक, सामाजिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक सक्रियता से सम्पन्न होना और उसका सम्मानपूर्ण होना, यही पूरे समाज की खुशहाली के मानक हैं।

आज सामाजिक कार्यकर्ता को समाज को खुशहाल बनाने के रास्तों को खोजने और बनाने में लगना है। विभिन्न जन-संघर्षों में इसी की खोज और निर्माण का कार्य करना है।



जन-संघर्ष क्या कह रहे हैं ?

देश भर में हर जगह 'विकास' के विरोध में जन-संघर्ष खड़े हो रहे हैं। पिछले 20 वर्षों में किसानों, आदिवासियों, छोटे दुकानदारों, मछुआरों, बुनकरों, तरह-तरह के कारीगर समाजों और असंगठित क्षेत्र के लोगों द्वारा विरोध के कई आंदोलन हुये हैं। किसान समाज कृषि उत्पाद के वाजिब दाम को हासिल करने के संघर्षों में लाखों की संख्या में एकजुट होता रहा है। मुलताई का ही उदाहरण है कि तीन साल से लगातार फसल के नष्ट होने का किसान जब मुआवजा मांग रहे थे तो पुलिस ने गोली चला दी और 24 किसानों की जान ले ली। तमिलनाडु कर्नाटक, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा और उत्तरप्रदेश में बड़े-बड़े किसान संघर्ष हुये। विस्थापन के विरोध के जन-संघर्ष तो देश में हर जगह हो रहे हैं। विस्थापित लोगों में किसान हैं, आदिवासी हैं, छोटे दुकानदार हैं और सेवा, मरम्मत व निर्माण में लगे असंख्य कारीगर हैं। स्त्री-समाज तो विस्थापन का सबसे गहरा दर्द झेल रहा है।

विस्थापन आज की दुनिया का सबसे बड़ा आक्रामक सच है। खनिज उत्खनन, बिजली उत्पादन, बांध, भारी उद्योग और जंगलों पर सरकारी कब्जे के बहाने किसानों और आदिवासियों को जंगलों और गांवों से खदेड़ा जा रहा है। शहरों का विस्तार, रिहायशी कालोनियाँ, पर्यटन और मनोरंजन उद्योग, हवाई अड्डे और राजमार्गों के निर्माण तथा बड़ी-बड़ी कम्पनियों के लिये किसानों से उनकी जमीन छीनी जा रही है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, आधुनिकीकरण, मशीनीकरण, और बाजार नीति के मार्फत कारीगरों और असंगठित क्षेत्र के तमाम परिवारों को उजाड़ा जा रहा है। छोटे-छोटे दुकानदार, झुग्गी-झोपड़ी के निवासी दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं।

इन सभी समाजों पर विस्थापन जबर्दस्ती थोपा जा रहा है। पुलिस और प्रशासन पूँजीपतियों के साथ मिलकर हर तरह की जोर-जबर्दस्ती करता है और विरोध की जायज आवाज़ को निर्ममता से बंद करता है। लाठी, गोली, जेल सबका सहारा लेता है। सभी राजनैतिक दल विस्थापन को अनिवार्य मानते हैं। 'विकास' के लिये विस्थापन होगा ही इस पर सभी दल सहमत हैं और थोड़े बहुत अपवादों को छोड़ कर पढ़ा-लिखा समाज इन्हीं के साथ है।

यहाँ हम विस्थापन के विरोध में चल रहे कुछ जनसंघर्षों की चर्चा कर उनकी आवाज़, विस्तार, विशेषता आदि उजागर करेंगे। यह समझने की कोशिश करेंगे कि ये क्या कह रहे हैं और खुशहाल समाज को बनाने की क्या संभावनायें रखते हैं?

(i) जन-संघर्षों का विस्तार

मध्य प्रदेश में ही अनूपपुर जिले में जर्मनी की मोज़रबायर कम्पनी ने बिजलीघर के निर्माण के लिये किसानों की जमीन अधिग्रहित करना शुरू किया। किसानों ने इसका विरोध किया तो सरकार, प्रशासन, पुलिस और प्रेस सब मोज़रबायर कम्पनी की ओर से किसानों का दमन करने में शामिल हुये। **सिंगरौली** जिले में यही स्थिति है। यहाँ अम्बानी, बिड़ला, दैनिक भास्कर, एस्सार, जे.पी. जैसी निजी कम्पनियां खनिज, बिजली-धातु-सीमेन्ट आदि के भारी उद्योग खड़े करने के लिये किसानों और आदिवासियों की जमीनों पर कब्ज़ा कर रही हैं और इसके लिये उन्हें सरकार और प्रशासन खुल कर मदद कर रहे हैं। किसान और आदिवासी पर हर तरह की जोर जबरदस्ती हो रही है। यही नहीं वहाँ के बाज़ारों के दुकानदार और मज़दूर भी सहम गये हैं। **कटनी** में वेलस्पन कम्पनी के खिलाफ किसानों ने लम्बा विरोध चलाया है तो **छिंदवाड़ा** और **सिवनी** के किसान पेंच परियोजना में उनकी जमीन और जीविका के छीने जाने के खिलाफ संघर्षरत हैं। **मण्डला** जिले में परमाणु ऊर्जा की इकाई के खिलाफ, तो सतना में सीमेन्ट कम्पनी के खिलाफ किसान एकजुट हुये। नर्मदा नदी पर बन रहे कई बाँधों के चलते किसानों की जमीन व जीविका के छीने जाने और बेदखली के खिलाफ **जबलपुर** से **अलीराजपुर** तक कई जिलों के किसान लामबंद होकर कई वर्षों से संघर्ष कर रहे हैं। इन्दौर शहर और इसके आसपास के जिलों में शहर के विस्तार, औद्योगीकरण, हाइवे, सूचना-संचार उद्योग, व दिल्ली-मुम्बई कारीडोर के निर्माण के चलते किसानों को विस्थापन के लिये बाध्य किया जा रहा है। **बुंदेलखण्ड के जिलों** में किसानों की जमीन औने-पौने दाम पर कम्पनियों को बेचने का दबाव बनाया जा रहा है।

छत्तीसगढ़ में, जो मध्यप्रदेश के बगल का ही राज्य है, लोहे व अन्य धातुओं की खानों पर टाटा, मित्तल, जिन्दल, वेदांत जैसी कम्पनियों के निजी कब्जे के लिये सैकड़ों गाँवों को उजाड़ दिया गया। वहाँ के आदिवासियों ने इसका

विरोध किया तो उसे कुचलने के लिये केन्द्र और राज्य की सरकारें युद्ध स्तर पर दमन करने के लिये एकजुट हो गईं। लोकतंत्र की हिमायती सरकारों ने आदिवासियों पर गोलियां चलाई, गाँव के गाँव जला दिये, कहर ढा दिया। इसी के बगल में **झारखंड प्रदेश में कोयलकारों बांध** के खिलाफ आदिवासी व किसान एकजुट हो संघर्ष कर रहे हैं और उन पर पुलिस ने गोली चला दी और 8 किसानों की जान चली गई। **दुमका** में कोयला खदान और इस्पात उद्योग से बेदखल आदिवासियों और किसानों पर चली गोली से 3 की जान गई। **पोटका, जमशेदपुर** में भूषण स्टील के लिये जबर्दस्ती जमीन लेने के खिलाफ उसी क्षेत्र में बड़ा आदिवासी आन्दोलन चल रहा है जहां 100 साल पहले टाटा ने अपनी स्टील कंपनी के लिये 24 गाँवों की जमीन छीनी थी।

उड़ीसा में जगतसिंहपुर जिले में दक्षिण कोरिया की कम्पनी पोस्को की इस्पात निर्माण व बिजली परियोजना के लिये भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसानों ने बड़ा संघर्ष छेड़ रखा है। **पश्चिम बंगाल** में **सिंगूर** में टाटा के मोटर कारखाने के लिये और **नन्दीग्राम** में इन्डोनेशिया के सलीम ग्रुप के रासायनिक कारखाने के लिये जमीन के अधिग्रहण के विरोध में किसानों ने लम्बे संघर्ष किये।

महाराष्ट्र में **विदर्भ** का क्षेत्र सरकारी नीतियों से की जा रही किसानों की हत्या के लिये जाना जाता रहा है। इसके अलावा यहाँ बड़े पैमाने पर निजी बिजलीघरों की स्थापना से किसानों को अपनी जमीन से बेदखल होना पड़ रहा है। बाँधों में डूब में जा रहे गाँवों और खेती की जमीनों को बचाने के लिये किसान एकजुट होकर संघर्ष करने की राह पर हैं। बाँधों का पानी खेतों की बजाय कम्पनियों की ओर मोड़ देने के खिलाफ किसान संघर्ष कर रहे हैं। **पुणे** के पास ऐसे ही एक विरोध में किसानों पर गोली चला दी गई। कोंकण में **जैतापुर** में परमाणु ऊर्जाघर के निर्माण के विरोध में गाँव के किसानों ने संघर्ष छेड़ दिया। हाल ही में **कोल्हापुर** की स्वाभिमानी शेतकरी संघटना ने गन्ने के किसानों पर हो रही ज्यादती के खिलाफ संघर्ष किया है। **गुजरात** में तटीय इलाके में बड़े पैमाने पर निजी कम्पनियों को विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने के लिये लाया जा रहा है। **मुंदरा** और **कच्छ** क्षेत्र में मछुआरे, नमक बनाने वाले और किसान बड़े पैमाने पर विस्थापित हुए हैं और जिनके संघर्ष चल रहे हैं।

उत्तरप्रदेश के **अलीगढ़** जिले में टप्पल में यमुना एक्सप्रेस-वे के लिये, **इलाहाबाद** में करछना में जे.पी. के बिजलीघर के लिये तथा **बलिया, गाजीपुर,**

वाराणसी और **मिर्जापुर** के गाँवों में गंगा एक्सप्रेस-वे के लिये भूमि अधिग्रहण का व्यापक विरोध किसानों ने किया। वाराणसी जैसे पर्यटन के महत्वपूर्ण शहर के विस्तारीकरण, सुंदरीकरण, आधुनिकीकरण और सांस्कृतिक नगरी के निर्माण के लिये किसानों की जमीनों को छीना जा रहा है जिसके खिलाफ कई स्थानों पर वर्षों से संघर्ष जारी है। **बरेली** में दिल्ली-लखनऊ को जोड़ने वाले एनएच 24 पर 29 किलोमीटर लम्बा बाइपास बनाने के लिये 30 से ज्यादा गाँवों की जमीनों का अधिग्रहण हो रहा है और रामगंगा बैराज के लिये लगभग डेढ़ लाख बीघा जमीन ली जा रही है। हाल ही में इसका विरोध करने वाले किसानों के संघर्ष का पुलिस ने दमन किया।

बिहार में नदियों पर तटबंधों के खिलाफ किसानों के संघर्ष होते रहे हैं। कोसी, बागमती, और अधवारा नदी समूह पूरे उत्तर बिहार में फैली हुई है। इन नदियों के तटबन्धों के चलते कई गाँव उजाड़ के घेरे में हैं।

भारत के **पूर्वोत्तर राज्यों** में नदियों पर बाँधों के चलते और तेल कुँओं की खोज में बड़े पैमाने पर लोगों को उनकी जमीनों और बस्तियों से बेदखल किया गया है। यहाँ के सभी राज्यों में इन 'विकास' प्रक्रियाओं के खिलाफ राज्य और जाति की सीमाओं को लांघते हुये लोग लगातार संघर्ष में हैं। ये संघर्ष उत्तर-पूर्व बचाओ आन्दोलन के रूप में देखे जाते हैं।

आन्ध्रप्रदेश में पिछले दस वर्षों में सिंचाई परियोजनाओं, तापीय बिजलीघर, खदानों, बंदरगाह, हवाईअड्डे, सड़कों के चौड़ीकरण, शहरों के रिंग रोड आदि के लिये अनेक स्थानों पर किसानों से उनकी जमीन जबर्दस्ती लेने की घटनायें हुई हैं। लगभग सभी जगह जबर्दस्त जन विरोध भी हुआ। इनमें से **श्रीकाकुलम** के **सोमपेटा** और **काकड़पल्ली** की घटनायें सभी जगह चर्चा में बनी रहीं क्योंकि वहाँ किसानों और मछुआरों के दमन में तीन आदमी मारे गये। **पश्चिम गोदावरी** जिले के किसान धान की खेती में भारी नुकसान के चलते 'फसल सत्याग्रह' तक कर चुके हैं। **तमिलनाडु** में **कुंडनकुलम** परमाणु ऊर्जा परियोजना के खिलाफ बहुत बड़ा संघर्ष खड़ा हुआ है।

कर्नाटक में रैयत संघ और **हरियाणा**, **पंजाब** और **उत्तर प्रदेश** में भारतीय किसान यूनियन के नाम से किसानों के संगठन सक्रिय हैं और कृषि उत्पाद के दाम व किसानों की अन्य समस्याओं पर आये दिन संघर्ष होते रहते हैं। इन

राज्यों में भूमि अधिग्रहण को लेकर हो रहे संघर्षों में भी किसान संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।

ये किसानों और आदिवासियों के संघर्षों के नमूने भर हैं। यदि विस्तार में सभी संघर्षों की फेहरिस्त बने तो एक पूरी किताब बन जायेगी। और फिर किसान और आदिवासी समाजों के अलावा देशभर में कारीगर समाज और पटरी, ठेले, गुमटी पर छोटी दुकानदारी करने वाले परिवार अपने काम से बेदखल किये जा रहे हैं। शहरों के पुनर्संगठन, बाजार की पक्षपातपूर्ण नीति, संसाधनों से बेदखली, बड़ी पूँजी के धंधों को समर्थन और मशीनों पर आधारित आधुनिकीकरण ने मिलकर इन्हें तबाह करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। बुनकर, मछुआरे, स्थानीय स्वास्थ्यकर्मी, कुम्हार, धोबी, पटरी-ठेले-गुमटी वाले आदि अपने-अपने स्तर पर संगठित होकर बेदखली के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। फुटकर धंधे में विदेशी कम्पनियों और देश के बड़े पूँजीपतियों के लिये जगह बनाने का काम सरकारें लगातार कर रही हैं और इसके खिलाफ ठेले-गुमटी वालों ने देश के तमाम शहरों में संघर्ष जारी रखा है। स्त्रियों के खिलाफ अत्याचारों का सार्वजनिक विरोध जगह-जगह हो रहा है।

कुल मिलाकर जन-संघर्षों का यह दौर तेज होता गया है और विस्तार भी पाता जा रहा है। इनमें एकता के धागे और परिवर्तन के साथ खुशहाल समाज बनाने की संभावनाओं की पहचान करना आवश्यक है।

(ii) जन-संघर्षों की विशेषता

विस्थापन के विरोध में खड़े हो रहे ये जनसंघर्ष एक नये युग के आगाज़ का संदेश दे रहे हैं। इन सारे संघर्षों में शामिल लोग, उनके विचार, मूल्य और तरीके वे नहीं हैं जिनसे हम अभी तक परिचित रहे हैं। पिछली सदी के, यानि औद्योगिक युग के, मज़दूर, छात्र व महिला आंदोलनों से हम परिचित हैं। पिछड़ी जातियों और दलित समाज के सशक्त उठाव हम देख चुके हैं, उनका सत्ता में आना महत्वपूर्ण घटनायें हैं। लेकिन जिन विचारों से प्रेरित ये आंदोलन और परिवर्तन हुये, वे आज के जनसंघर्षों को दिशा नहीं दे पा रहे हैं। आज के संघर्षों की कुछ विशेषताओं का हम नीचे जिक्र कर रहे हैं। इनसे हमें इन संघर्षों की बुनियादी ताकत को समझने में मदद मिलेगी।

- इन संघर्षों में बड़े पैमाने पर शामिल लोग वे हैं जो कभी विश्वविद्यालय नहीं गये, बहुत तो स्कूलों में भी नहीं गये, इसका मतलब यह नहीं है कि ये अज्ञानी हैं। इनके पास जो ज्ञान है, वह लोकविद्या है। किसान, आदिवासी, स्त्रियाँ, छोटे दुकानदार, तरह-तरह की वस्तुओं का निर्माण और मरम्मत करने वाले कारीगर, मछुआरे, तरह-तरह की सेवा उपलब्ध कराने वाले हुनरमंद समाज इत्यादि अपनी जीविका और जीवन लोकविद्या के बल पर संगठित करते हैं। इस ज्ञान को वे विश्वविद्यालय से प्राप्त नहीं करते बल्कि अपने घर-परिवार में, समाज से, बुजुर्गों से, काम की जगहों पर, मित्रों और सहयोगियों से, मेहनत और लगन के साथ प्राप्त करते हैं तथा अपनी बुद्धि, अनुभव, जरूरत और तर्क से इसे निरंतर निखारते रहते हैं। लोकविद्या मात्र वस्तुओं के उत्पादन का ज्ञान नहीं है, बल्कि इसमें उत्पादन की क्रियाओं की गहरी समझ होती है, समाज और प्रकृति से उनके रिश्ते की समझ होती है, संगठन निर्माण व उसका संचालन तथा सामाजिक सम्बन्ध बनाने और प्रबन्धन का ज्ञान भी शामिल होता है। लोकविद्या के सिद्धान्तों और मूल्यों का अपना ढाँचा है, उसका अपना एक दर्शन है और ये सिद्धान्त या दर्शन किसी शास्त्र से बंधे नहीं हैं, बल्कि जीवन की ठोस परिस्थितियों में लगातार प्रकृति के साथ सम्बन्ध के पुनर्निर्माण की एक बहती धारा होते हैं। यह कोई लुप्त हो रही परम्परा का बचा-खुचा ज्ञान नहीं है, बल्कि समय के साथ सतत् इसका नवीनीकरण होता रहता है। इस ज्ञान के मार्फत ही मनुष्य अपने भूतकाल और भविष्य की पहचान करता है, पूर्वजों के कार्यों से जो लेना है वह चुनता है और जो छोड़ना है वह त्यागता है। इन समाजों और समुदायों के ज्ञान, यानि लोकविद्या, पर विस्थापन की करारी मार पड़ रही है। यह केवल जीविका, संसाधन या रहने के स्थानों से ही विस्थापन है ऐसा नहीं है, बल्कि लोगों को उनके ज्ञान के इस्तेमाल से वंचित करने की व्यवस्था है। उन्हें उनके मूल्यों, रहन-सहन के तरीकों, उनके सामाजिक और प्राकृतिक माहौल से दूर करने का अर्थ यह है कि उन्हें उनके जीवन दर्शन से नोंच कर अलग करना।

संघर्षरत ये समाज लोकविद्या के स्वामी समाज हैं और **लोकविद्याधर समाज** के नाम से एक नई पहचान बना रहे हैं।

- **संघर्षरत ये लोकविद्याधर समाज प्रकृति के साथ लय बनाकर जीने का उद्देश्य और ज्ञान रखते हैं।** विश्वविद्यालय का ज्ञान दुनिया के उन भू-भागों में विकसित हुआ जहाँ प्रकृति आक्रामक है। इस ज्ञान के अंदर ही प्रकृति पर आक्रामक नियंत्रण और उसे काबू में करने का भाव व अंतर्धार है। प्रकृति और समाज दोनों पर ही इस ज्ञान के जरिये अभूतपूर्व हिंसा हुई है। जंगलों का नाश, कृषि का रासायनिकरण, जलवायु परिवर्तन, उपनिवेशीकरण, साम्राज्यवाद व आज का 'विकास' उपक्रम, सभी का ज्ञान-आधार विश्वविद्यालय के ज्ञान में ही है। लोकविद्या में प्रकृति को माँ का दर्जा है, जो सभी जीवों का ममतापूर्वक लालन-पालन करती है। 'विकास' के विरोध के ये आंदोलन लोकविद्या की पुनर्प्रतिष्ठा के रूप में भी देखे जाने चाहिये। खुशहाल समाज के निर्माण के लिये यह लगभग अनिवार्य शर्त है कि हर व्यक्ति, स्त्री और पुरुष, सृजनशील, सक्रिय, स्वस्थ और जीवन की आवश्यकताओं (व्यवस्थाओं) से पूर्ण हो। यह तभी संभव है जब समाज के हर सदस्य की बौद्धिक-शारीरिक आदि क्षमताओं को पूर्ण सम्मान और अवसर मिले। दूसरे शब्दों में जीवन को संगठित करने की ऐसी व्यवस्थाएँ हों, जो सभी लोगों के ज्ञान को समाहित करती हों और उन्हीं के बल पर विकसित होती हों। लोकविद्या एक बहुत बड़े जन समुदाय की विद्या है। इसकी पुनर्प्रतिष्ठा से समाज और प्रकृति में न्यायपूर्ण गतिशीलता आकार लेगी और कुछ ही लोगों के लिये हो रहे 'विकास' की प्रक्रिया को रोका जा सकेगा।
- **ये जनसंघर्ष ज्यादातर स्थानों पर स्वयंस्फूर्त संघर्ष हैं।** हालांकि इन संघर्षों का नेतृत्व बहुत बार पढ़े-लिखे समाज से आता है, लेकिन वह अपने विचारों के बोझ को उतारकर संघर्षरत समाज के जीवन और संवेदनाओं के साथ जितना गहरे पैठता है उतना ही संघर्ष खरा बनता जाता है, ऐसा देखा जा रहा है।
- **लगभग सभी संघर्षों में स्त्री-समाज की एक बड़ी भूमिका है।** स्त्रियाँ मात्र रणनीति के तौर पर शामिल नहीं हैं जैसा कि इन जन-संघर्षों के शुरूआती दौर में मीडिया और पढ़े-लिखे समाज द्वारा समझा गया। और न ये स्त्रियाँ एक व्यक्ति के रूप अपनी पहचान बनाये जाने की चाहत अथवा महत्वाकांक्षा से इन संघर्षों में खड़ी हैं। ये स्त्रियाँ अपने समाज के साथ समाज

का प्रतिनिधि बनकर, समाज का अंग बनकर खड़ी हैं। ये संघर्ष समाज के साथ स्त्रियों के सम्बन्धों को नये सिरे से उद्घाटित करने की संभावनायें खोल रहे हैं।

- **हालांकि ये संघर्ष कम-अधिक रूप में स्थानीयता में बंधे दिखाई देते हैं, लेकिन इनकी संख्या और व्यापकता इनके वैश्विक होने की बात को प्रमुखता देती है।** दुनियाभर में एक नई शासन व्यवस्था आकार ले रही है और शासक वर्ग जिस प्रकार की ऐशो-आराम की जिन्दगी चाहता है उसके लिये 'विकास' के नाम पर लोकविद्याधर समाजों को कई देशों में उजाड़ा जा रहा है। जगह-जगह पर चल रहे जन-संघर्ष इस विरोध की अभिव्यक्ति है। जिस तरह एक समय दुनिया में उपनिवेशीकरण का दौर चला था, कुछ इसी तरह की घटना आज हो रही है। लोकविद्याधर समाज के जन संघर्ष वैश्विक स्तर पर हैं और सत्य व न्याय की वाहक शक्ति के रूप में देखे जाने चाहिये।
- **वास्तविकता यह है कि विस्थापन से विस्थापितों की जिन्दगी तो तबाह होती ही है, साथ ही पूरे क्षेत्रीय समाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं।** जहां नई परियोजनायें आती हैं वहां की पहले की खेती, कारीगरी और दुकानदारी टूट जाती है। नये बाजार बनते हैं, जिनमें कमाने वाले सब बाहर से आये लोग होते हैं, स्थानीय लोगों को फुटकर मजदूरी से ज्यादा कुछ नहीं मिलता। नया सामाजिक-आर्थिक-प्रशासनिक-सांस्कृतिक तंत्र आकार लेता है और सरकार की नई प्राथमिकतायें अस्तित्व में आती हैं। स्थानीय समाज के नही के बराबर लोग इन नई व्यवस्थाओं में जगह पाते हैं तथा अधिकांश पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पूरा क्षेत्र सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक-पर्यावरणीय बिगाड़ का शिकार बनता है। लेकिन विस्थापितों के संघर्ष बहुधा जिनकी जमीन या दुकान छिन रही होती है या डूब रही होती है उन्हीं के संघर्ष बन जाते हैं। इन संघर्षों में इजाफे की जरूरत है। इस बात की जरूरत है कि पूरे स्थानीय समाज के प्रश्न उठाये जायें और व्यापक एकता का प्रयास हो। इसके अभाव में विस्थापितों के संघर्ष औद्योगिक मजदूरों के उन संघर्षों की तरह हो जाते हैं जो उन्हें बाकी जनता से अलग-थलग करते हैं।



जन-संघर्षों में एकता के रास्ते

देश और दुनिया में जगह-जगह चल रहे इन जन संघर्षों में एकता का विचार बने यह आज की बड़ी जरूरत है। यह एकता बनाना बड़ी चुनौती इसलिये बनी है क्योंकि संघर्षरत समाज अलग-अलग प्रकार के हैं। आदिवासी समाज जंगलों में रहता है और उसके जीवन का संगठन एकदम भिन्न है। किसान गाँवों में है, तो कारीगर बस्तियों, कस्बों और नगरों में। स्त्रियाँ घरों में हैं और पटरी-ठेले-गुमटी वाले छोटे दुकानदार बाजारों में। इन सभी के कार्य व संसाधन भिन्न हैं, सामाजिक सम्बन्धों में भिन्नता है। धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि की भिन्नतायें भी हैं।

इस सबके बावजूद इनके बीच एकता बनाने के विविध प्रयास हुये हैं। जन आन्दोलनों का राष्ट्रीय समन्वय, किसान आंदोलन अन्तर्राज्यीय समन्वय समिति, वाया कम्पेसिना (अंतर्राष्ट्रीय किसान मंच), धरती माँ के अधिकारों के आंदोलन, जल-जंगल-जमीन पर स्थानीय नियंत्रण के लिये कार्यरत अभियान व आन्दोलन तथा आदिवासी आंदोलनों के अंतर्राष्ट्रीय समूह इस एका को बनाने में लगे हुये हैं। हम यहाँ दो महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा के मार्फत लोकविद्या दृष्टिकोण से इस बृहत एकता को बनाने के बारे में कैसे सोचा जाय इसकी चर्चा करेंगे।

(i) लोकविद्याधर समाज के दुःख

आज वे ही लोग बदहाल हैं जो लोकविद्या के बल पर अपनी जिन्दगी चलाते हैं। इन्हें ही विस्थापित होना पड़ता है। इन्हीं के उत्पादन को बाज़ार में मूल्य नहीं मिलता, इन्हीं को पानी-बिजली नहीं मिलती, और इन्हीं को सार्वजनिक जीवन में सम्मान का स्थान नहीं मिलता। इनमें किसान हैं, आदिवासी हैं, कारीगर हैं, स्त्रियाँ हैं, छोटे-छोटे दुकानदार और असंगठित क्षेत्र में सेवा, मरम्मत और निर्माण का काम करने वाले लोग और समुदाय हैं। ये सब लोकविद्याधर हैं। इस समाजों व समुदायों की पहचान **लोकविद्याधर समाज** के रूप में करने से जन-संघर्षों में एकता के विचार का दर्शन खुलता जाता है। आज की दुनिया में **लोकविद्याधर समाज** के मोटे तौर पर चार बड़े दुःख हैं—

- लोकविद्याधर समाज को इनके जीवनयापन के कार्यों, संसाधन और रहने के स्थानों से लगातार विस्थापित किया जाता है।

- इन्हें राष्ट्रीय संसाधनों जैसे बिजली, पानी, शिक्षा, चिकित्सा, वित्त आदि का सबसे छोटा हिस्सा दिया जाता है।
- बाजार में इनके श्रम का बहुत कम मूल्य मिलता है और ज्ञान का मूल्य तो कभी दिया ही नहीं जाता।
- इनके ज्ञान यानि लोकविद्या को ज्ञान का दर्जा नहीं दिया जाता।

ये चारों दुःख लोकविद्याधर समाज के सभी घटकों में हैं और इन्हें एक दूसरे के नज़दीक आने का अवसर देते हैं। आपस में चिंतन, वार्ता और समर्थन का आधार बनाते हैं। लोकविद्याधर समाज के वर्तमान संघर्ष इन दुःखों से जनित पीड़ा और संवेदना की वह आभिव्यक्ति हैं, जो इन दुःखों को दूर करने की चेतना-निर्माण का जरिया है। यहीं से इन समाजों में व्यापक एकता का रास्ता खुलता नज़र आता है।

(ii) जन-संघर्षों की बुनियादी शक्ति

इन जन-संघर्षों की विशेषतायें और लोकविद्याधर समाज के दुःख इनकी शक्ति को एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। संघर्षों की एकजुटता के लिये सृजनशील, क्रियाशील और न्यायपूर्ण पहल की शक्ति के स्रोतों को पहचानना ज़रूरी है। वे क्या हैं? विस्थापन विरोध के संघर्षों में लगे कार्यकर्ता, संगठन और समूह बहुधा संघर्षरत लोगों के पास जो ज्ञान (लोकविद्या) है उसे इज्जत की नज़र से देखते हैं। वे यह भी मानते हैं कि साइंस और टेक्नोलाजी को आगे-आगे कर के तमाम संसाधनों को हड़पने और उसके मार्फत लोगों की जीविका छीनने के जो कार्यक्रम 'विकास' के नाम पर चल रहे हैं उनकी खिलाफत होनी ही चाहिये और ये लोग हमेशा ऐसा करते भी हैं। चूँकि विश्वविद्यालय की शिक्षा का दबाव इतना ज्यादा है कि लोकविद्या के पक्ष में कोई भी सार्वजनिक बयान या विचार देना मुश्किल बन गया है। आज़ादी के आन्दोलन में महात्मा गांधी ने अलग परिस्थितियों का निर्माण किया था। राजनीति और सार्वजनिक जीवन की ऐसी अवधारणायें बहस में लाई थीं जो विश्वविद्यालय की शिक्षा के दब-दबे में नहीं थीं। हालांकि उस समय भी उनके तरीकों और विचारों का विरोध हुआ लेकिन विश्वविद्यालय से पढ़ा-लिखा समाज उतना बड़ा नहीं था जितना अब हो गया है। गांधी जी के कार्यक्रमों में लोकविद्या के तौर-तरीकों, ज्ञान-मूल्यों का नये ढंग से सार्वजनिक व राजनीतिक भाषा और बहस में समावेश हुआ। इसी के चलते दूर-

दराज के गाँवों में और घरों के अंदर बैठी स्त्रियों तक एक नये विश्वास का संचार हुआ। आज भी विविध विचारधाराओं से काम करने वाले ऐसे अनेक कार्यकर्ता, संगठन और समूह हैं जो यही सिलसिला उठाते हैं। ये सब लोकविद्या को, लोगों के ज्ञान को, सम्मान की नज़र से देखते हैं। बस एक कदम और उठाना है, लोकविद्या को इन समाजों की मूल शक्ति के रूप में पहचानना है। संघर्ष के तर्कों में ज्ञान की भाषा का समावेश करना है। तभी यह भी संभव हो सकेगा कि लोकविद्या का दर्शन आज के समाज में बुनियादी बदलाव तथा एक खुशहाल समाज के निर्माण के दर्शन के रूप में सार्वजनिक और राजनैतिक बहस में आये। इससे इन जन-संघर्षों में नई जान फूँकी जा सकती है और आपसी एकता के रास्ते उजागर किये जा सकते हैं।

लोकविद्या में आस्था ही सत्य और न्याय के पथ का दर्शन करायेगी। यहीं से एक खुशहाल समाज के निर्माण का दर्शन और कार्य आकार लेंगे? इसमें अद्भुत विविधता है। दुनिया में कई जगह ऐसी ही सुगबुगाहट शुरू हो चुकी है। पिछले कुछ वर्षों में बोलीविया और इक्वाडोर जैसे देशों से इस दिशा में सशक्त पहल उठी है। ये दोनों देश दक्षिण अमेरिका में हैं और पिछले कुछ समय से लोकोन्मुख परिवर्तनकारी अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्व के साथ उभरे हैं। इन्होंने 'धरती माँ के अधिकार', और 'प्रकृति के अधिकार' जैसे विचारों को राजनीति में लाया है। ये प्रकृति के साथ लय में जीने के विचार हैं और इन देशों के आदिवासियों ने अपने ज्ञान, मूल्य और जीवनदृष्टि के बल पर इसके दर्शन को गढ़ा है। लोकविद्या के दर्शन और विचार के बल पर इन देशों ने यूरोप और अमेरिका के साम्राज्य विस्तार को रोकने, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की 'विकास' की राजनीति को पीछे ढकेलने में सशक्त पहल की है। ये सभी शुरूआती कदम ही माने जा रहे हैं।

हमारे देश में भी लोकविद्याधर समाज के पास जो ज्ञान है उसको एक सार्वजनिक और राजनैतिक भाषा देने की दरकार है। लोकविद्या का दावा पेश होना है। इसी में इन जनसंघर्षों की एकता और एक खुशहाल समाज के बीज हैं। जन-संघर्षों में लगे कार्यकर्ता, नेतृत्व, संगठन और समूहों का यह दायित्व है कि वे लोकविद्या के दावे को पेश करने के रास्ते बनायें।



ज्ञान की राजनीति

लोकविद्याधर समाजों के जन-संघर्षों में एकता का विचार ज्ञान की राजनीति को जन्म देता है। लोकविद्या में इन समाजों की सक्रियता, सृजनशीलता, पहल और विश्वास के बीज हैं और इसके बल पर जनता के भले की नीतियों का आग्रह ही ज्ञान की राजनीति है। लोकविद्या का दावा पेश करके उस सार्वजनिक भाषा और बहस को खड़ा करना ज्ञान की राजनीति का काम है जिससे लोकविद्याधर समाज एकजुट होंगे, शक्ति को प्राप्त करेंगे, अन्याय से मोर्चा लेंगे और खुशहाल समाज को आकार देंगे।

आज सूचना युग में हम एक ऐसे बिन्दु पर खड़े हैं जहाँ पर 'ज्ञान' हर गतिविधि का प्रमुख केन्द्र बन गया है। औद्योगिक क्रांति के समय से मनुष्य की वैचारिक और व्यावहारिक गतिविधियों का केन्द्र 'उत्पादन' रहा है। पूँजीवादी व्यवस्थाओं के विस्तार में बड़े-बड़े कारखाने बने और उत्पादन के साधन, उन पर मालिकाना, नियंत्रण, प्रबन्धन, केन्द्रीकृत और विकेन्द्रीकृत उत्पादन आदि मुद्दे बहस में प्रमुख रहे। इन्हीं मुद्दों के इर्द-गिर्द शोषित और प्रताड़ित लोगों और समाजों ने भी अपनी मुक्ति के संघर्ष खड़े किये। समाजवाद का विचार हो या गांधी का, दोनों में 'उत्पादन' की व्यवस्था तथा प्रक्रिया आदि विचार व कार्य के केन्द्र में रहे। आज सूचना युग में वही स्थिति 'ज्ञान' की है। सूचना-संचार की प्रौद्योगिकी, विशेषकर इंटरनेट ने सारी बातों के केन्द्र में 'ज्ञान' को ला कर खड़ा कर दिया है और वह खुद संगठित ज्ञान के नये स्थान, वास्तव में केन्द्रीय स्थान के रूप में विकसित हो रहा है। इस बहस के अनेक दार्शनिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक आयाम हैं जो पिछले दशक से ही खुलना शुरू हुए हैं। यहां हम इसकी एक बुनियादी बात की ओर केवल ध्यान ले जाना चाहते हैं कि इसके जरिये सम्पर्क की एक नई दुनिया बन रही है जिसकी एक बहुत बड़ी अभिव्यक्ति 'सामाजिक मीडिया' है जिससे बहुत लोग परिचित हैं। इसके चलते 'ज्ञान' की नई परिभाषा बनी है जिसके तहत साइंस के अलावा अन्य अनेक ज्ञान की धाराओं को ज्ञान माना जाने लगा है। इससे ज्ञान की दुनिया में साइंस की सिरमौर स्थिति टूटी है और लोकविद्या को भी ज्ञान माना जाना शुरू हुआ है। कृषि, उद्योग, वास्तु, वस्त्र, चिकित्सा, कला और पर्यटन व मनोरंजन उद्योगों में

लोकविद्या को भी स्थान दिया जाने लगा है। हालांकि यह पूँजीवादी व्यवस्थाओं के पुनर्संगठन की आवश्यकता से ही हुआ है और इस प्रक्रिया में लोकविद्या नये सिरे से शोषण का शिकार हो रही है। इसके बावजूद यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि जिस लोकविद्या को औद्योगिक युग में ज्ञान मानने से साफ इनकार कर दिया गया और जड़ परम्परा, 'झाड़-फूंक' और 'अंधविश्वास' कहा गया, वह लोकविद्या आज ज्ञान की दुनिया में एक सम्मानजनक बहस का मुद्दा बन गई है। **लोकविद्या और संगठित विद्या बहस के दो पक्ष बन रहे हैं। उसी के अनुरूप वैश्विक स्तर पर दो किस्म की नई राजनैतिक प्रक्रियायें शुरू हुई हैं, जिन्हें उनके समर्थक बड़े परिवर्तन की शुरूआत के रूप में देख रहे हैं।**

पहली वह है जो नई टेक्नोलाजी, सामाजिक मीडिया और उनके इर्द-गिर्द विकासशील वर्गों से सम्बन्धित बताई जा रही है। अरब देशों, जैसे तुनीसिया, लीबिया, मिस्र व सीरिया में वहां की एकाधिकारिक सत्ताओं को चुनौती देने वाले जन आन्दोलन, थाईलैंड में भ्रष्टाचार के विरोध में आन्दोलन, अमेरिका में 99फीसदी के नाम पर शीर्ष वित्तीय प्रबंधन को चुनौती देने वाला 'कब्जा करो' आन्दोलन और भारत में भ्रष्टाचार विरोधी जन-आन्दोलन इस नई राजनीति की शुरूआत बताये जा रहे हैं। इनमें से अधिकांश को अमेरिका का प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन है इसलिये इनके परिवर्तनकारी चरित्र पर प्रश्न उठाये गये हैं। किन्तु ये सब भारी जन समर्थन पर आधारित रहे हैं और नये बन रहे सामाजिक मीडिया के बड़े इस्तेमाल से खड़े हुए हैं, इसलिये परिवर्तन की दृष्टि से इनका महत्व और नयापन दोनों ही नकारना कठिन है। अपने देश के भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन से हम सब नजदीक से परिचित हैं। अत्यधिक और सर्वव्यापी भ्रष्टाचार से सभी त्रस्त हैं, इसलिये इस आन्दोलन को व्यापक समर्थन मिला है। पार्टी बनाकर राजनीति में सीधे दखल के साथ दिल्ली विधान सभा में सफलता ने इस आन्दोलन की राजनीतिक ताकत उजागर की है और उसमें अभी सतत इजाफे की संभावना रेखांकित हुई है। पिछले जन आन्दोलनों से अलग जो खास बात इसमें है वह यह कि पिछले 20 साल में उदीयमान नये पढ़े-लिखे वर्ग का इसे व्यापक समर्थन है और इस पढ़े-लिखे वर्ग का नेतृत्व सूचना प्रौद्योगिकी व नई आर्थिक संरचना से जुड़े तबकों में है, जो लगभग पूरा इंटरनेट वाले सामाजिक मीडिया पर है। ये

सूचना युग में उदीयमान नई राजनीति के कुछ मोटे पहलू हैं **इसे हम संगठित ज्ञान की नई राजनीति** भी कह सकते हैं।

दूसरी ओर लोकविद्या की राजनीति के रूप में पहचानी जा सकने वाली क्रियायें भी वैश्विक स्तर पर पिछले 10 वर्षों में अस्तित्व में आई हैं। दक्षिण अमेरिका के देशों बोलीविया और इक्वाडोर की पहल में यूरोप के ज्ञान (साइंस) की टूटती स्थिति की सही पहचान की गई है। इन देशों के वर्तमान नेतृत्व ने सूचना युग में अमेरिका के बढ़ते कदमों को थामने में लोकविद्या की ताकत को पहचाना है। उन्होंने धरती मां और प्रकृति के अधिकारों की बात की है और इन्हीं के सैद्धांतिक आधार ले कर अपने नये संविधान बनाये हैं, जिनमें उनकी लोक-सांस्कृतिक विरासत और मूल्यों को प्रमुख स्थान दिया गया है। यह लोकविद्या के बल पर उस साइंस को चुनौती है, जो इस 'विकास' का बुनियादी ज्ञान है और ज्ञान की दुनिया पर अब तक एकछत्र राज करता रहा है। वाया कम्पेसिना नाम के अंतर्राष्ट्रीय किसान संगठन में दक्षिणी अमेरिका, एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप के कई देशों के किसान संगठन शामिल हैं। इसने संयुक्त राष्ट्र के 'खाद्य सुरक्षा' कार्यक्रम का कड़ा विरोध कर 'खाद्य सम्प्रभुता' का विचार सामने लाया है, जो किसानों की अपनी शक्ति और स्थानीय संसाधनों पर आधारित व्यवस्था की वकालत करता है। उच्च शिक्षा के व्यावसायिक निगमीकरण के विरोध में यूरोप के अनेक देशों में ज्ञान-मुक्ति के आवाहन पर उठे छात्र आंदोलन ने विश्वविद्यालय के ज्ञान पर प्रश्नचिन्ह लगाना शुरू किया है। छात्रों का कहना है कि वे जीवंत ज्ञान को हासिल करना चाहते हैं जबकि विश्वविद्यालय मरा हुआ ज्ञान दे रहे हैं। विश्वविद्यालय संगठित विद्या के सबसे बड़े केन्द्र हैं और उन पर ऐसे सवालिया निशान नये किस्म की ज्ञान की राजनीति की संभावना उजागर करते हैं।

हमारे देश में लोकविद्या की चौड़ी और जीवंत बहती धारा है। हम पिछली ही सदी में इस धारा के बल पर गांधी जी के नेतृत्व में उपनिवेशवादी व्यवस्था को शिकस्त देने की सशक्त जन राजनीति खड़ी कर चुके हैं। आजादी के बाद 1980 के दशक में देशभर में शुरू हुए किसान आंदोलन व जल-जंगल-जमीन पर स्थानीय नियंत्रण के आन्दोलन लोकविद्या विचार की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। आज चल रहे जन-संघर्ष फिर एक बार लोकविद्या की ओर बढ़ने की

आवाज़ दे रहे हैं। यह आवाज़ लोगों के ज्ञान की आवाज़ है। इस ज्ञान की आवाज़ की राजनीति गढ़ने की क्रियायें ज्ञान आंदोलन और लोकविद्या का दावा पेश करने की क्रियायें हैं।

इस तरह भिन्न-भिन्न स्थानों व सामाजिक घटकों से लोकविद्या के पक्ष में या लोकविद्या की ओर झुकाव रखने वाले विचार और आंदोलन उभर रहे हैं। ये कुछ शुरूआती कदम के ही रूप हैं। यही समय है जब लोकविद्या को खुलकर अपना दावा पेश करना चाहिये और अपनी ज्ञान की राजनीति की पहल लेनी चाहिये।

(i) ज्ञान आंदोलन

आमतौर पर जब भी ज्ञान की बात होती है तो लोग विश्वविद्यालय या पढ़े-लिखे लोगों की ओर देखते हैं, जबकि हमारे देश में कबीर, रैदास और मीराबाई जैसे अनेक संतों द्वारा छोड़ी गयी ज्ञान आंदोलन की लम्बी परम्परा रही है। यह हमेशा ही संगठित विद्या के बाहर सामान्य जीवन में व्याप्त ज्ञान और सामान्य लोगों में बसे ज्ञान के बल पर न्याय, प्रतिष्ठा, उत्सर्ग और उत्थान को हासिल करने का विश्वास स्थापित करती रही है। गांधी जी ने भी इसी धारा को आधुनिक युग में मूर्तरूप दिया। सब जानते हैं कि कला और चिकित्सा के क्षेत्र में आज भी ज्ञान की वे परम्परायें हैं जो विश्वविद्यालय के बाहर मज़बूत रूप में उपस्थित हैं। मनुष्य की गतिविधि के तमाम क्षेत्रों में कमोबेश ऐसी स्थिति मिलती है। हम क्यों केवल विश्वविद्यालय की ओर देखते हैं? आज बहुमत जनता को पूँजी के प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों और राज्य की व्यवस्थाओं ने अज्ञानी घोषित कर रखा है। जनता यानि किसान, कारीगर, आदिवासी, स्त्रियाँ और छोटे दुकानदार परिवार वे हैं जिन्हें अपने ज्ञान को हासिल करने में वर्षों की लगन और बुद्धि लगती है और खुद की जोखिम पर प्रयोगों का सतत् सिलसिला चलाना होता है। किसान को किसानी में शिक्षित होने में प्रकृति का, जमीन का, मौसम का, बीजों का, पौष्टिकता और न जाने कितने जीवों और प्रक्रियाओं का गहराई से ज्ञान हासिल करना होता है। कारीगर भी वर्षों के शिष्यत्व और अभ्यास के बाद ही उत्पादन कर पाने की कला हासिल करता है। इस दौरान विभिन्न पदार्थों, प्रक्रियाओं, बलों आदि के गुण और आपसी सम्बन्धों की समझ हासिल करता है। आदिवासी जंगल के कण-कण

की खूबी को जानने में पूरा जीवन लगा देता है। छोटा दुकानदार बाजार के उतार-चढ़ाव में छोटी पूँजी के प्रबन्धन की महारत रखता है, जिसे सीखने में उसे वर्षों लग जाते हैं। ये सब अपने समाज और उसके संगठन तथा संचालन की विधियों, मान्यताओं, मर्यादाओं की जानकारी रखते हैं और आवश्यकतानुसार इन सब में इजाफा भी करते रहते हैं। लोकविद्याधर समाज की ज्ञान की अपनी एक दुनिया होती है। इस सबको अनदेखा कर पढ़े-लिखे लोगों की दुनिया और संगठित ज्ञान के केन्द्र इनके ज्ञान को ज्ञान का दर्जा देने से इनकार करते हैं और अपने एकतरफा व पक्षपातपूर्ण मानदण्ड लगाकर इन्हें अशिक्षित घोषित कर देते हैं। **शासन की नीतियाँ इनके ज्ञान को मूल्य नहीं मिलने देती, इसलिये ये लोग गरीब हैं। सार्वजनिक दुनिया में इनके ज्ञान को सम्मान नहीं है, इसलिये इन समाजों के मूल्य और संस्कृति हाशिये पर पड़े रहते हैं। जन-संगठनों के साथ इनके ज्ञान का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है, इसलिये इनका कोई राजनैतिक महत्व नहीं है।** आज एक ऐसे राजनैतिक आंदोलन की ज़रूरत है, जिसमें बहुमत जनता अपने ज्ञान के बल पर गति पैदा करती हो। ऐसे तमाम लोग मिलते रहते हैं जो कहते हैं कि इन समाजों के पास ऐसा कुछ नहीं है जिसके बल पर ये अपनी स्थिति में सुधार कर सकें तथा इन समाजों को अपने बाहर से शक्ति हासिल करनी पड़ेगी। ऐसा कहने वालों में मूर्ख भी हैं और बदमाश भी। अब खड़े हो रहे लोकविद्याधर समाज के ज्ञान आंदोलन के सामने इन बातों का फरेब ज़रा भी नहीं टिक पायेगा।

अगर लोगों के मन का और सबके लिये न्याय का समाज बनना है तो उसे आम लोगों की सक्रियता पर ही आधारित होना होगा और इस सक्रियता का आधार किसी बाहरी शक्ति में नहीं बल्कि उनके अपने ज्ञान (लोकविद्या) में होना होगा। विद्या किसी और की हो और उससे हमारी शक्ति बने, हमारे जीवन में सुधार हो, यह नहीं हो सकता। जिसकी विद्या उसकी शक्ति। 'विकास' की आधारभूत विद्या (विश्वविद्यालय की विद्या या साइंस) को हासिल कर लोकविद्याधर समाज शक्तिशाली बने, यह नहीं हो सकता। 'विकास' की विद्या आज की सबसे बड़ी विध्वंसकारी शक्ति है, उसका विकास और विस्तार समाज और प्रकृति के प्रति हिंसा और अन्याय को ही बढ़ावा देगा। इस अन्यायी ज्ञान को नियंत्रित करने के लिये लोगों

के पास जो ज्ञान है उसका इस्तेमाल करना होगा। समाज में जो ज्ञान बसता है, लोगों के पास जो ज्ञान है, उसकी शक्ति को पहचानना और उद्घाटित करना इस ज्ञान आन्दोलन का एक काम है। यह ज्ञान आंदोलन उन लोगों का है जो कभी विश्वविद्यालय नहीं गये। यह ज्ञान आंदोलन समाज में एक ऐसा ताना-बाना बुनेगा जिसमें आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों के नवीनीकरण की क्रियायें जन्म लेंगी। ज्ञान आन्दोलन का विस्तार लोकविद्याधर समाज के लिये अपनी ताकत को सार्वजनिक बनाने के रास्ते खोलेगा।

आज लोकविद्याधर समाज ऐसा ज्ञान आंदोलन छेड़ने के कगार पर है। ज्ञान की राजनीति की शुरुआत ऐसे ही ज्ञान आंदोलन से होती है जो वर्तमान जन-संघर्षों में लोगों के ज्ञान यानि लोकविद्या की बहती धारा को पहचाने और उसकी शक्ति का दर्शन कराये।

(ii) लोकविद्या का दावा

आज परिवर्तन की राजनीति को आकार देने वाले लोग यह जानते हैं कि दुनियाभर में किसान और आदिवासी एक नया दावा पेश कर रहे हैं। अपनी-अपनी भाषा में और अपने-अपने तरीकों से वे कह रहे हैं कि अपने ज्ञान, मूल्यों और विश्वासों के साथ जीना और वह सब ज्ञान प्राप्त करना जो वे चाहते हैं, ये उनके जन्मसिद्ध अधिकार हैं। इन्हें उनसे छीना नहीं जा सकता। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में नये किस्म की हलचल दिखाई दे रही है जिससे पूरी दुनिया के शोषित, उत्पीड़ित एवं विस्थापित लोगों की एक नई एकता की संभावना उजागर होती है। इस एकता का आधार लोकविद्या में होना है, यानि उनके इर्द-गिर्द के समाजों और प्रकृति की उनकी समझ में, जो समान है, उसमें होना है। इसका अर्थ है कि किसानों, आदिवासियों, कारीगरों, दुकानदारों, मजदूरों और स्त्रियों को मिलकर लोकविद्या का दावा पेश करना चाहिये। यह कोई जीविकोपार्जन की जरूरत भर का दावा नहीं है, यह एक नई खुशहाल दुनिया बनाने का दावा है। यह दावा पेश करना है कि पूँजी और ज्ञान के व्यवसायीकरण को लोकविद्या बुनियादी चुनौती दे सकती है। यह दावा पेश करना है कि सत्य व सामाजिक-आर्थिक बराबरी के समाज का ज्ञान-आधार लोकविद्या में है। लोकविद्या के ये दावे पेश होने का सिलसिला विस्थापन विरोध के और लोकविद्याधर समाजों के अन्य

जन-संघर्षों को असीम आत्मविश्वास और शक्ति से सम्पन्न करेगा। ज्ञान की राजनीति लोकविद्या के दावे पेश होने का ही एक सिलसिला चलायेगी। लोकविद्या के दावे किस रूप में हो सकते हैं इसका अनुमान हम नीचे दिये कुछ बिन्दुओं पर चर्चा से प्राप्त कर सकते हैं।

➤ **लोकविद्या के बल पर जीवनयापन करना यह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।**

लोकविद्या मनुष्य की पहचान है। लोकविद्या में सभी ज्ञान की शुरुआत होती है और सभी ज्ञान लौटकर लोकविद्या में आता है। जो ज्ञान वापस लोकविद्या में नहीं आता, वह समयान्तर में मनुष्य, समाज और प्रकृति का दुश्मन हो जाता है तथा ज्ञान कहलाने का हक खो देता है। 'विकास' की विद्या लोकविद्या में वापस लौटने से इनकार कर रही है। इस पर काबू करने का तरीका लोकविद्या का दावा पेश करने में है। लोकविद्या के बल पर जीने का अधिकार प्रकृति प्रदत्त अधिकार है, इसे कोई छीन नहीं सकता। दर्शन के स्तर पर कहिये तो किसी के लिये भी अपने ज्ञान के जरिये अपना जीवन चलाना, यह एक स्वयंसिद्धि है। यानि इसे मानने के लिये किसी तर्क की ज़रूरत नहीं है। यही बात जब राजनीति की भाषा में कही जाय तो जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में सामने आती है। मनुष्य को जीने का बुनियादी हक है, ऐसा हक जो छीना नहीं जा सकता। यह बात देश के संविधान में भी है, लेकिन, चूंकि इसकी प्रासंगिकता प्रमुखतः शोषित और विस्थापन के शिकार समाजों के लिये है, इसलिये इसे उनकी ताकत यानि लोकविद्या से जोड़कर परिभाषित करना ज़रूरी है तभी यह एक कारगर सिद्धांत का रूप ले सकता है।

विस्थापन लोगों को उनके ज्ञान की दुनिया से जबर्दस्ती अलग करता है, उनसे अपने ज्ञान के बल पर जीने के संसाधन और व्यवस्थायें छीनता है। विस्थापन लोकविद्याधर समाज को ज्ञान विहीन बनाने का सशक्त माध्यम है, यह ज्ञानी लोगों को सस्ती मजदूरी के लिये मजबूर कर देता है। ज्ञान की राजनीति समाज को इस मजबूरी से बचाने की राजनीति है। लोकविद्या के बल पर जीने के जन्मसिद्ध अधिकार का दावा जीवन बचाने की ही लड़ाई नहीं बनता, बल्कि एक ऐसी दुनिया की रूपरेखा खींचने की शुरुआत होती है

जिसमें मनुष्य, समाज और प्रकृति के बीच नये सिरे से भाईचारे के सम्बन्ध बनना शुरू होंगे। यही नहीं, इसके चलते लोकविद्या को ज्ञान की प्रतिष्ठा मिलेगी और लोकविद्याधर समाज को ज्ञानी मानने के आधार मूर्त हो उठेंगे।

इसका मतलब यह है कि हर तरह का विस्थापन गैर कानूनी करार दिया जाना चाहिये और सरकारों को उन व्यवस्थाओं को पुख्ता करना चाहिये जो लोकविद्या के बल पर जिन्दगी खुशहाल बनाने के लिये जरूरी हैं। इसके लिये यह तो जरूरी होगा ही कि ठामीण क्षेत्रों में तथा आदिवासी क्षेत्रों में बड़ी कम्पनियों को प्रवेश न करने दिया जाय।

➤ ज्ञान की विभिन्न धाराओं के बीच बराबरी

लोकविद्या का एक दावा यह भी है कि ज्ञान के क्षेत्र में ऊँच-नीच नहीं होती। विभिन्न ज्ञान की धाराओं और उनके आधार पर किये जा रहे कार्यों को बराबर का सम्मान और मूल्य मिले यह खुशहाल न्यायसंगत समाज की बुनियाद है।

लोकविद्याधर समाज के लोग ऐसे तमाम काम करना जानते हैं जिन्हें विश्वविद्यालय से पढ़े लोग नहीं कर सकते। लेकिन शासन दोहरी नीति अपनाता है। विश्वविद्यालय से पढ़े लोगों को पच्चीस हजार रूपये से शुरू करके डेढ़-दो लाख रूपये तक का नियमित और पक्का मासिक वेतन दिया जाता है तथा इसके अलावा तमाम तरह की सुविधायें और सुरक्षा। जबकि लोकविद्या के जानकार लोगों को केवल पाँच से दस हजार रूपये कमाने में दिन-रात एक करना पड़ता है। यह आमदनी भी निश्चित नहीं होती, कभी बिल्कुल नहीं, कभी कम, तो कभी थोड़ी ज्यादा, कोई अलग से सुविधा नहीं और इतना कमाने के लिये उनका सारा परिवार इसमें जुटा रहता है। पक्की और नियमित मासिक आय केवल आधुनिक शिक्षा वालों के लिये ही हो यह नीति बदलनी ही होगी। सभी पक्की और नियमित आय के हकदार हैं। **ज्ञान के क्षेत्र में ऊँच-नीच नकारने का सीधा अर्थ यह है कि पक्की, नियमित और जायज आय सुनिश्चित करने में पक्षपात बंद हो।** लोकविद्याधर समाज और विश्वविद्यालय से पढ़े-लिखे लोगों को सरकार की नीति एक नजर से देखे। यानि सरकारी कर्मचारियों जैसी आय ही लोकविद्या के बल पर काम करने वालों के लिये भी सुनिश्चित हो। गरीबी और बेरोजगारी

खत्म करने और खुशहाल समाज की ओर बढ़ने का यही एकमात्र उपाय है। इससे देश का सारा श्रम और सारा ज्ञान नियमित काम में लग जायेगा। सबकी खुशहाली के साथ देश को आगे बढ़ाने का इससे तेज कोई रास्ता नहीं है।

➤ राष्ट्रीय संसाधनों का बराबर का बँटवारा

राष्ट्रीय संसाधनों पर देश के हर नागरिक का बराबर का अधिकार है लेकिन लोकविद्याधर समाज को राष्ट्रीय संसाधनों का सबसे छोटा हिस्सा मिलता है। राष्ट्रीय संसाधनों में शिक्षा, चिकित्सा, बिजली, पानी, वित्त आदि आते हैं। इन सबकी व्यवस्थाओं के निर्माण में लोकविद्याधर समाज का बड़ा योगदान है, और मिलता क्या है, एक नहीं के बराबर हिस्सा। राष्ट्रीय संसाधनों की नीतियाँ कुछ इस तरह से बनाई गई हैं कि पढ़े-लिखे शहरी समाज और आधुनिक औद्योगिक समाज की जरूरतों को ऐसी वरीयता दी जाती है कि बाकी लोगों की बारी कभी आती ही नहीं है। शहर, सरकारी संस्थानें, उनके परिसर, कालोनियाँ, कम्पनियाँ, बड़ी पूँजी के उद्योग, मीडिया और मनोरंजन उद्योग, सूचना-संचार उद्योग आदि लगभग पूरा उठा ले जाते हैं। राष्ट्रीय संसाधनों में हिस्सा न मिलने के चलते लोकविद्या पर आधारित धंधों और उद्योगों में कठिनाईयों के पहाड़ खड़े हो जाते हैं। ऐसे में, लोकविद्या का एक दावा यह भी होना होगा कि राष्ट्रीय संसाधनों का बराबर का बँटवारा हो। इसकी शुरूआत कुछ इस तरह के मुद्दों से की जा सकती है—

- शिक्षा और स्वास्थ्य (चिकित्सा) के क्षेत्रों में मुनाफा कमाना गैर कानूनी घोषित किया जाय।
- बिजली उत्पादन की आवश्यकता और विस्तार तय करने के पहले बिजली वितरण की नीति बननी चाहिये। यह वितरण नीति ऐसी हो कि अभी उत्पादित बिजली का गाँव व शहर, छोटे व बड़े उद्योग, कालोनी और बस्तियों, आदि में बराबर का बँटवारा हो। जब तक ऐसी वितरण नीति के क्रियान्वयन का ठोस रूप न बने, तब तक उत्पादन के विस्तार पर रोक लगनी चाहिये। विस्थापन बंद करने में इसकी कितनी बड़ी भूमिका होगी यह देखना कठिन नहीं है।

- वित्तीय आवंटन, कर्ज आदि में लोकविद्या से जीवनयापन की आर्थिक गतिविधियों को वरीयता दी जानी चाहिये। इसी के जरिये सभी के लिये नियमित और पक्की आय की व्यवस्थाएँ हो सकती हैं।

➤ **स्थानीय व्यवस्था में स्थानीय समाजों को वरीयता**

लोकविद्या का यह दावा पेश होना चाहिये कि स्थानीय समाज के पास वह सारा ज्ञान है जिसके बल पर स्थानीय व्यवस्थाओं को चलाया जा सकता है। बाजार, सड़क, सफाई, मनोरंजन, आदि सभी व्यवस्थाओं की योजना, निर्णय और क्रियान्वयन में स्थानीय समाज के ज्ञान यानि लोकविद्या को भरपूर स्थान मिलना चाहिये। इसकी शुरूआत कुछ इस तरह की जा सकती है—

- छोटी उत्पादन की इकाईयों को बाजार में आरक्षण हो।
- छोटे दुकानदारों के साथ बड़ी पूँजी की प्रतिस्पर्धा गैरकानूनी घोषित हो।
- वस्त्र और खाद्य निर्माण के क्षेत्र स्त्रियों के लिये आरक्षित हों।
- प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय समाजों का नियंत्रण हो।

➤ **हर गांव में मीडिया स्कूल हो**

लोकविद्याधर समाज अपने ये दावे पेश कर सके और बदलती हुई दुनिया में खुशहाल और बराबरी की जिन्दगी के लिये परिस्थितियां बना सके, इसके लिये इन समाजों के युवाओं को अपने ढंग से सोचने की विधायें विकसित करनी होंगी। अपनी बात क्या है, उसे कैसे कहना है, किससे कहना है, कहां दावा पेश करना है, आपस में वार्ता की विधायें क्या होनी हैं और इन सब बातों का कैसा ताना-बाना बनाया जाना चाहिये आदि सीखने और सिखाने के स्थान होने चाहिये। ये ज्ञान आधारित सम्पर्क, सम्प्रेषण, संचार, सम्बन्ध आदि के लोकविद्या दर्शन के स्थान होंगे। इनकी अवधारणा तैयार करना और गांव-गांव में इनकी रचना के कदम बढ़ाना ज्ञान की राजनीति का महत्वपूर्ण कार्य है। ये ही स्थान लोकविद्याधर समाज के मीडिया स्कूल होंगे।



आओ, नया रास्ता बनायें

जन-संघर्षों की राजनीति जब तक ज्ञान की राजनीति नहीं बनती तब तक बदलाव और खुशहाली के रास्ते नहीं खुलते। ये ज्ञान की बातें लोकविद्या की बातें हैं, उस दर्शन, दक्षता और व्यवस्था की बातें हैं जो लोगों के अपने हैं। इस सबका रास्ता केवल वहां से खुलता है जहां लोग अपनी पहल पर न्याय के लिये संघर्ष कर रहे हैं। इस छोटी सी पुस्तिका में इन संघर्षों की चर्चा की गई है व इनकी विशेषताओं को समझने का प्रयास किया गया है। लोकविद्याधर समाज में आपस में व्यापक एकता कैसे बने इसके बिन्दुओं की एक तस्वीर पेश की गई है, जो उनके दुःखों और ज्ञान का एक ऐसा ताना-बाना है, जिससे सबके लिये खुशहाल समाज की ओर बढ़ने का बुनियादी दर्शन और तर्क खुलकर सामने आता है। एक तरफ विश्वविद्यालय की विद्या का अन्यायी और आक्रामक रूप सामने आता है तो दूसरी तरफ लोकविद्या के वे दावे मुखर होते हैं, जो पूंजी की राजनीति ध्वस्त करने और ज्ञान की राजनीति के मार्फत न्यायसंगत खुशहाल समाज बनाने के मुकाम तक इस बात को ले जाते हैं। यह साफ है कि यह सब एक बहुत बड़े जन आन्दोलन के बिना नहीं हो सकता, लेकिन यह भी साफ है कि यह किया जा सकता है और इसका कोई विकल्प नहीं है। लोकविद्या में ही रास्ता है और लोकविद्याधर समाज यह जानता है, बस करतब को आकार लेना है जो केवल उनकी एकता से ही साध्य है।

लोकविद्या जन आन्दोलन का प्रमुख काम इस एकता को बनाने में है। यही एकता इस आन्दोलन का उद्देश्य है और एकता के क्रमिक रूप इस आन्दोलन की कसौटी। पहला कार्य इन संघर्षों के बीच व्यापक समन्वय का है। लोकविद्या जन आन्दोलन का कहना यह है कि **इस समन्वय के प्राण लोकविद्या में विश्वास से जागृत होते हैं और यह करने का तरीका यह है कि संघर्षकर्ता, उनके सहयोगी, नेता और समर्थक अपनी बात कहने में ज्ञान की भाषा का इस्तेमाल करें।** यह न कहा जाय कि जमीन छिन जाने से किसान बरबाद हो जायेगा क्योंकि उसे कोई दूसरा काम नहीं आता। बल्कि यह कहा जाय कि किसान के पास खेती का ज्ञान है इसलिये उसकी जमीन नहीं ली जानी चाहिये।

एक से ज्यादा काम किसे आता है? बुनकर इस बात की जिद करें कि वे बिनकारी के शिल्पकार हैं, बिनकारी के लिये ही उन्हें कम से कम हजार रुपये रोज की आमदनी होनी चाहिये। ठेले-गुमटी वाले कहें कि वे छोटी पूंजी के प्रबंधकर्ता हैं और ऐसे ही प्रबंध की हैसियत से यह देश एक खुशहाल अर्थव्यवस्था की ओर जा सकता है। स्त्रियां यह दावा करें कि हर तरह की किसानी और कारीगरी में हमारी भागीदारी है और जब तक परिवार समाज की इकाई है तब तक विस्थापन से अधिक विनाशकारी कदम नहीं हो सकता। जब इस किस्म की बातें खुली बहस में आयेंगी, संघर्षकर्ताओं की ओर से दावे के रूप में सामने आयेंगी, तो आदिवासियों का यह कहना कि जंगल हमारे हवाले कर दो, समाज और पर्यावरण दोनों की दृष्टि से एक अकाट्य तर्क के रूप में सामने आयेगा। ये बातें इन संघर्षों को केवल जीविका बचाने के संघर्षों के रूप में नहीं पेश करेंगी, बल्कि संघर्षकर्ताओं और पीड़ित समुदायों को उस ज्ञान के स्वामी के रूप में पेश करेंगी जिसके आधार पर एक बार फिर स्वराज की ठोस कल्पना की जा सकती है। यही ज्ञान की भाषा उस संवाद का स्तर भी बदल देगी जो जन संघर्षों और प्रशासन के बीच चलता है और जिसमें परिवर्तन की जरूरत है।

लोकविद्या जन आन्दोलन का कहना है कि जन-संघर्षों के लोग इस तरह अपने संघर्षों की चर्चा में ज्ञान की भाषा का इस्तेमाल करें या उनके अपने विचार से ज्ञान की बातें संघर्षों के साथ जोड़कर जिस तरह की जानी चाहिये, वैसे करें। आशा है कि ये प्रयास लोकविद्याधर समाज के संघर्षों को एक दूसरे के नज़दीक ला सकेंगे। यही जनता की ज्ञान की राजनीति है।



लोकविद्या साहित्य

1998 – 2013

लोकविद्या विचार कई प्रकाशनों के मार्फत सामने लाया गया है। अभी तक के प्रकाशनों की सूची नीचे दी जा रही है। विद्या आश्रम से इन्हें प्राप्त किया जा सकता है।

हिन्दी

- लोकविद्या विचार (पुस्तक)
- रामअधार गिरि : लोकहित के प्रहरी (पुस्तक)
- लोकविद्या संवाद पत्रिका के विशेष अंक : कारीगर, किसान, नारी, स्थानीय बाजार, सूचना युग में समाज में ज्ञान पर वार्ता, साहित्य विद्या
- लोकविद्या पंचायत पत्रिका कुल 17 अंक
- कारीगर नजरिया पत्रिका
- ज्ञान की राजनीति पुस्तकमाला : बौद्धिक सत्याग्रह, लोगों के हित की राजनीति और ज्ञान का सवाल, ज्ञान मुक्ति आवाहन, युवा ज्ञान शिविर, लोकविद्या
- लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला : विस्थापन रोको, बाजार मोड़ो, लोकविद्या बाजार बनाओ, स्मारिका : लोकविद्या जन आन्दोलन प्रथम अधिवेशन 2011, लोकविद्या सत्संग, जन-संघर्ष और लोकविद्याधर समाज की एकता

अंग्रेजी

- Gandhi's Challenge to Modern Science (Book)
- Lokavidya, Internet and the Future of the University (Book)
- **Bulletins : Dialogues on Knowledge in Society**
Knowledge in Society, Virtuality and Knowledge in Society, Knowledge Satyagraha, Radical Politics and the Knowledge Question

विद्या आश्रम की वेबसाइट www.vidyaashram.org पर आश्रम के सदस्यों के कई महत्वपूर्ण लेख उपलब्ध हैं। ऊपर दिये गये लगभग सभी प्रकाशन भी वेबसाइट पर उपलब्ध हैं।





आज विस्थापन कष्ट, गरीबी, मजबूरी और अन्याय के प्रतीक के रूप में उभरा है। सड़क के किनारे टूटी-फूटी झोपड़ियों में रहने वाले, ईंट-भट्ठों, सड़कों और इमारतों के निर्माण में काम करने वाले, तमाम छोटी-छोटी खान-पान की व अन्य दुकानों में काम करने वाले बच्चे, विस्तार पा रहे मध्य वर्ग के घरों में झाड़ू-पोंछा-बर्तन करने वाली महिलायें और तमाम तरह के मजदूर, ये सब विस्थापन के शिकार समाजों और परिवारों के लोग होते हैं। लोगों से उनके ज्ञान के इस्तेमाल के संसाधन छीन लेना यह आधुनिक युग में शोषण और लूट का एक बहुत बड़ा हथियार रहा है। इससे उत्पीड़ित लोकविद्याधर समाजों के लोग चारों तरफ इसके खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। इन संघर्षों में आपसी सहयोग और इन समाजों के बीच एकता में उस परिवर्तन की धुरी है, जो हमें एक खुशहाल समाज की ओर ले जा सकता है।